ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-3*April- 2018
Innovation The Research Concept

'दलित कहानी में दलित नारी विमर्श व दलित विमर्श'

सुनीता शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
प्रेम चन्द मारकण्डा एस.डी
कालेज फॉर वूमैन,
जालन्धर

सारांश

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में सम्पन्न और विपन्न दो वर्ग रहे है। सम्पन्न वर्ग का जीवन सुख, समृद्धि और अधिकारों से पूर्ण होता है, इसके विपरीत विपन्न वर्ग का जीवन अभावों, यन्त्रणाओं तथा कुण्ठाओं से भरा हुआ होता है। प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था के आधार पर समाज को चार भागों में बांटा गया था' ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस व्यवस्था में शूद्र ही एक ऐसा वर्ग था जिसका कार्य पूरे समाज की सेवा करना था, फिर भी उस समय न तो कोई सामाजिक विषमता थी और न ही किसी को किसी प्रकार का अभाव था। शरीर के अंगों की भांति ही प्रत्येक वर्ग एक दूसरे के पूरक थे। परन्तु कालान्तर में यह व्यवस्था बिगड़ती गई और शूद्र समाज का दीन–हीन वर्ग बन कर रह गया। धीरे–धीरे उस पर अत्याचार किये जाने लगे, उसका जीवन अभावों और व्यथाओं से परिपूर्ण होने लगा और वह समाज में पूर्णतः असहाय व दलित बनकर रह गया।

मुख्य शब्द : दलित–विमर्श, भारतीय समाज

प्रस्तावना

हिन्दी भाषा में 'दलित' शब्द कोई नवीन नहीं है। प्राचीन साहित्य से लेकर आज तक इसका प्रयोग साहित्य में होता रहा है। पर यह दूसरी बात है कि वर्तमान सन्दर्भो में यह एक वर्ग विशेष के लिए रूढ़ हो गया हैं। जबकि संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग एक विशेषण की भांति होता था। 'दलित' शब्द की व्युत्पति संस्कृत के 'दल' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है – तोड़ना, कुचलना। संस्कृत शब्द कोशों में 'दलित' शब्द के अर्थ– '' दला गया, मर्दित और पीसा गया है।'' [1]

मानक हिन्दी–अंग्रेजी शब्द कोशों में दलित शब्द के लिए 'डिप्रेस्ड' (dipressed) मिलता है। इसके अतिरिक्त 'डाउनट्रोडेन' भी मिलता है। [2] हिन्दी शब्द कोशों में भी संस्कृत और अंग्रेजी के समान ही 'दलित' का अर्थ है– मसला हुआ, रौंदा हुआ, खंडित, विनष्ट किया हुआ। [3] दलित शब्द 19 वीं शती के सुधारवादी आन्दोलनों (नव जागरण काल) की उपज है और आज यह साहित्य का सर्वाधिक चर्चित शब्द बन गया है। दलित वर्ग समाज का निम्नतम वर्ग होता है, जिसको विशिष्ट संज्ञा आर्थिक विषमताओं के अनुरूप ही प्राप्त होती है। उदाहरणतयः दास प्रथा में दास, सामन्तवादी प्रथा में किसान, पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर, समाज का दलित वर्ग कहलाता है। 'दलित' शब्द को विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है उनमें से कतिपय विद्वानों की परिभाषाएं निम्न प्रकार से उल्लेख की जाती है।

डॉ. श्योराज सिंह 'बेचैन' के अनुसार– मेरे विचार से भारतीय समाज व्यवस्था में जिन्हें जन्म के आधार पर निम्न जाति करार दिया गया है, जिनके साथ बहिष्कार का व्यवहार हुआ है, जो अछूत माने गये है वे सब साहित्य की भाषा में दलित है। दूसरे शब्दों में दलित की सबसे अच्छी एवं सही परिभाषा संविधान में तय की गयी अनुसूचित जातियां एवं जन जातियां दलित है। [4] ओम प्रकाश के अनुसार– '' दलित शब्द व्यापक अर्थ बोध की अभिव्यंजना करता है। भारतीय समाज व्यवस्था में जिसे अस्पृश्य माना गया वही व्यक्ति दलित है। '' [5] डॉ. धर्मवीर के अनुसार – ''दलित हिन्दू वर्ण व्यवस्था का कुछ नहीं लगता। वर्ण व्यवस्था दलित की न मां है, न ताई, न चाची न मौसी और न मामी न कूफी। ––––हिन्दू वर्ण व्यवस्था दलित के लिए एक जेल है।'' [6] दलित साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए मोहनदास नैमिशराय लिखते है ––––'' भारतीय समाज में विषमताएं हैं, उनसे जोड़कर मैं दलित साहित्य की संकल्पना को देखता हूं, क्योंकि इसी भावना के साथ दलित साहित्य का जन्म हुआ है। किसी भी क्षेत्र में जो विषमताएं होगी, उसके खिलाफ विद्रोह आवश्यक होता है। ऐसा मैं मानता हूं। '' [7] इस प्रकार हम कह सकते है कि वर्तमान सन्दर्भो में दलित शब्द

उस संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुआ है जो समाज के दीन–हीन, अभावग्रस्त और शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिसे कालान्तर से समाज के उच्च वर्गो के द्वारा पीड़ित किया गया है और सामाजिक विषमता और अन्याय सहन कर रहा है। इस प्रकार से दलित शब्द का प्रयोग हिन्दी में अछूत अस्पृश्य के अर्थ में किया जाता है अछूत अथवा अस्पृश्यों का साहित्य, इस स्थूल अर्थ में भी दलित साहित्य को व्याख्यायित किया जा सके ऐसी स्थिति भी नहीं है।

आधुनिक समाज में दलितों के प्रति स्वर्णो का व्यवहार आज भी उतना ही कटुतम है तभी तो दुष्यन्त कुमार जी ने अपनी गजल में लिखा है –

''आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि वे बुनियाद हिलनी चाहिए,
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।''

तसमों मां ज्योतिर्गमय, और दया धर्म का मूल है पाप मूल अभियान ऐसा जिस धर्म का देश ––––– उपदेश है, उस धर्म पर निराशा, अकर्मण्यता तथा अज्ञान का परदा पड़ा हुआ न हो, ऐसा लगता है क्योंकि इसी हिन्दू समाज का हिस्सा है दलित समाज। आज आधुनिक हिन्दी कहानी में भी उन पर हो रहे अत्याचारों के बारे में दृष्टिपात किया गया है। दलितों के प्रति हुए अत्याचार के फलस्वरूप प्रतिक्रिया में दलितों का सवर्णों के प्रति व्यवहार आज भी उनके दुर्व्यवहार उनके सामने लालबत्ती है। साहित्य में हम दलित साहित्य की तीन धाराएं देखते है। उनमें पहली धारा स्वयं दलित जातियों में जन्में लेखकों की है, जिनके पास स्वानुभूतियों का विराट संसार है। दूसरी धारा हिन्दू लेखको की है, जिनके रचना संसार में दलितों का चित्रण सौन्दर्य सुख की विषय–वस्तु के रूप में हुआ है। तीसरी धारा प्रगतिशील लेखकों की है, जो दलित को सर्वहारा की स्थिति में देखते है। यदि दलित साहित्य पर गहराई के साथ विचार किया जाए तो साहित्य की इन तीन धाराओं का उदय एक साथ नहीं हुआ। हिन्दू धारा के साहित्य में दलित–विमर्श राष्ट्रीय आन्दोलन की देन है। स्वतन्त्रता संग्राम के समय जब दलित–मुक्ति का प्रश्न उठा और पूना–पैक्ट के बाद जब गांधी जी ने अछूतोद्धार के लिए काम किया तो हिन्दी साहित्यकारों का भी इस समस्या की ओर ध्यान गया। प्रेमचन्द इस धारा के अत्यन्त सशक्त लेखक है। दलित साहित्यान्दोलन सन 1960 के बाद मराठी में शुरू हुआ। इसकी बुनियाद डॉ. बाबा साहिब अम्बेडकर के आन्दोलन ने डाली।

आधुनिक युग के आरम्भ का आधार पहिए ही खोज के साथ माना जाना चाहिए। आधुनिक युग का साहित्य लिखित रूप से संग्रहीत होने लगा। कई विधाओं में साहित्य रचा जाने लगा। उदाहरणतया–उपन्यास, नाटक, कहानी, कविता व्यंग्य, लेख काव्य आदि। इनमें मुन्शी प्रेमचन्द के पदार्पण के साथ ही कहानी में यर्थाथता ने स्थान पाया है। मुन्शी प्रेम चन्द ने अपने तीन सौ से अधिक कहानियां, मानसरोवर भाग–1 से लेकर आठ तक में प्रसिद्ध है। इन सभी कहानियों में जीवन की सामाजिक यर्थाथ का निरूपण और उद्देश्य में आदर्शोन्मुख यर्थाथता बतायी है। तभी से हिन्दी कहानी साहित्य का इतिहास, स्वतन्त्रता आदि के उच्च विचारों से विभूषित हुआ है पर धरातल तो वही पिछड़ा हुआ है, दवा कुचला, चीत्कार करता हुआ समाज ही रहा। जिसका क्रन्दन, आह, आंसू के रूप में कहानीकारों के मस्तिष्क में चेतना को उजागर कर गया। आज कहानी का मुख्य स्वर वही क्रन्दन वही पुकार बन गया है। दलित मानव समूह पर सवर्णो के किये गये अन्याय और अत्याचार का निरूपण तो हुआ ही है। साथ ही शोषित–पीड़ित दलितों के आक्रोश और प्रतिरोध का भी निरूपण किया है। उनके घृणास्पद आचरण का बोध भी कराया है।

भारतीय समाज में प्राचीन युग में ऋषि–मुनियों ने वर्णाश्रम व्यवस्था को स्थापित किया था। परिणाम स्वरूप समाज चार वर्णो में विभाजित हुआ। प्रथम में ब्राह्मण द्वितीय में क्षत्रिय, तृतीय में वैश्य और चतुर्थ में अर्थात् अन्तिम वर्ण में शूद्र जाति को स्थान मिला। इस शूद्र जाति के लोग सदैव दलित, पतित, अनपढ़, दरिद्र , पिछड़े अशिक्षित जीवन जीने को बाह्य हुए। युगों–युगों तक समाज द्वारा तिरस्कृत एवं अपमानित एवं अन्याय को चुपचाप सहने वाले इस वर्ग के समूह पर सवर्णो ने अत्यधिक अत्याचार किये। सदियों से वर्ण–व्यवस्था की बेड़ियों में बंधे हुए समाज को उन बेड़ियों की भयावहता और क्रूरता से परिचित कराने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति महात्मा ज्योति राव फुले थे। उसके बाद बाबा अम्बेडकर के नेतृत्व में अछूतों को अपने अधिकार के लिए विषम हिन्दू–समाज व्यवस्था के विरोध में आक्रोश पूर्ण आन्दोलन का सूत्रपात हुआ वही आक्रोश दलित लेखको ने भोगे हुए यर्थाथ के रूप में अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित किया राष्ट्र पिता महात्मा गांधी अस्पृष्यता को भारतीय समाज का कलंक मानते थे। सवर्णो को इन दलितों के स्वीकार के लिए मानसिकता से तैयार करने के लिए अपने साबरमती आश्रम में हरिजन परिवार दूदाभाई को स्थान दिया और उनकी बेटी लक्ष्मी को गोद लिया। आम्बेडकर के प्रयत्नों को सवर्ण गांधी जी ने अपने आचरण द्वारा अनुमोदन दिया था। इसके अतिरक्ति स्वतन्त्रता के बाद भी महाराष्ट्र के बेलछी और यू.पी. बिहार में सवर्णो द्वारा दलितों पर अत्याचार होते रहे और गांधी जी के स्वप्न का भारत भारत नहीं बन पाया। उनके कई कारण हमें दलितों की तरफ से भी मिलते है जैसे– कि पूरी शिक्षा न पाने के कारण वे लोग अन्याय का सामना नहीं कर सकते और यह भी सत्य है कि उस लोगों में भी आपसी दंगा फसाद और एकता का अभाव और नशा करने की आदतें ही उनकी दरिद्रता का मूल कारण है। ऐसी स्थिति में चारों तरफ से उनका शोषण होता है जिसका प्रतिबिम्ब साहित्य पर पड़ा।

स्वतन्त्रता के पश्चात सांवैधानिक अधिकारों एवं शिक्षा–दीक्षा द्वारा दलित समाज में अपने अधिकारों के लिए जागृति आयी है। परिवर्तन के समय में स्वतन्त्रता से पहले महाराष्ट्र में और कुछ समय बाद मद्रास केरल, कर्नाटक और आन्ध्रप्रदेश में सवर्णो के विरोध में संघर्ष की भूमिका स्वीकार की गई है। समाज में पतित दलित और कुचले इन समुदाओं के लोगों की मनः स्थिति एवं विषताओं का वर्णन कवि राजेश कुमार बौद्ध की 'आंतक'

कहानी, रतन वर्मा की कहानी 'बलात्कारी' और राम निहोर विमल की कहानी 'अब नही नाचव' में विद्रोही भाव जागृत होकर सामाजिक प्रतिहिंसा में परिवर्तित होते है।

इन कहानियों की कथा भिन्न–भिन्न है पर उनमें कहीं न कहीं अन्याय और आज तक के शोषण के विरूद्ध विद्रोह के भाव उठाए गए है। सदियों से चले आ रहे विविध धर्म एवं सम्प्रदाओं के अनुयायियों ने दलित समाज की उपेक्षा कर उन्हें कोने में धकेल दिया था, पर उनमें नव चेतना जागृत हो उठी है। देश के विभिन्न प्रदेशों में कही न कही अपने अधिकार के लिए आन्दोलन होते रहते है। इन आन्दोलनों में सफलता भी मिल रही है। स्वतन्त्रता के बाद राजकीय पक्षों ने स्वार्थ सिद्धि के लिए ही सही दलित वर्ग के लिए नेतृत्व के लिए एक मंच–तैयार किया, परिणाम स्वरूप विविध सरकारी सेवाओं में आरक्षण एवं अन्य अधिकारों की प्राप्ति हुई है। पर इससे किसी न किसी रूप में सवर्णो पर उनके अत्याचारों की बढ़ोत्तरी भी हुई है आज भी दलितों के साथ ऐसी नई घटनाएं घटती है जिन्हें देख–सुनकर हमारा दिल पसीज जाता है। इन कहानियों में भारतीय समाज के उस विशेष वर्ग की पीड़ा और संवेदना निरूपित की गई है। आज भारतीय समाज में दलित वर्ग बहिष्कृत का स्थान पाता है पर जब तक दलित–समाज अपने आपको विद्रोह के लिए तैयार नहीं करेगा, तब तक उसकी स्थिति नहीं बदलेगी।

दलित नारी पर हुए अत्याचारों का वर्णन राजेश कुमार बौद्ध की कहानी 'आंतक' में ठाकुरो के आंतक की चरम सीमा का वर्णन किया है जो दलित साहित्य के माध्यम से पाठको को झकझोर कर रख देती है। आज भी हमारे समाज में दलित नारी का शोषण हो रहा है। 'आंतक' कहानी का विषय तो दलित नारी पर हो रहे अत्याचार की सीमा बढ़ती है तो उसे सहन करने की मर्यादा भी समाप्त हो जाती है तभी विद्रोही भावना उत्पन्न होती है। जिसका यर्थाथ चित्रण राजेश कुमार ने किया है। दलित समाज की अवस्था उनकी दरिद्रता उनका भोलापन इन सभी में समय के साथ–साथ अब परिवर्तन आ गया है। फिर भी अत्याचार और शोषण पूर्ण रूप से निर्मूल नहीं हो पाया। पर ऐसा भी तो नहीं कि दलित समाज अत्याचारियों को क्षमा कर देता है। समय के अनुसार वह पुराने सभी हिसाब एक साथ पूरे किये जाते है जैसा कि इस कहानी में राखी की देवरानी विमला ने किया है।

विमला 'आंतक' कहानी की महत्त्वपूर्ण नायिका है। कहानी में जो अत्याचार राखी ने सहन किया है वह नायिका विमला ने नही सहन किया वह विद्रोह करती है। राखी से ठाकुर का अत्याचार हृदय विदारक है। राखी का बेटा ठाकुर के बेटे से लड़ते हुए उस पर भारी पड़ गया। यही बात ठाकुर को अच्छी नहीं लगी। भला 'छुटकन' जाति के लोग ठाकुरों के मुंह लगे, कैसे सहन करते ठाकुर। बदले में ठाकुर जाति पर टूट पड़ते और राखी को बेरहमी से मारकर उसे नंगा करके कमरे में बंद कर देते है। किसी ने ठाकुरों का विरोध नहीं किया। इसी कारण शायद राखी पर अत्याचार होता रहा। ठाकुर और उनके साथियों ने मिलकर राखी से बलात्कार किया। राखी चीखती चिल्लाती रही उसकी सहायता किसी ने नहीं की। राखी के देवर ने पुलिस को शिकायत की पर पुलिस ने कुछ नहीं किया। शैतान ठाकुर, राखी को जलाकर मार डालता है। नारी पर इतना अधिक अत्याचार हुआ। सभी ने ठाकुर से प्रार्थना की पर ठाकुर ने कुछ न सुना। राखी के बाद ठाकुर विमला पर अत्याचार करता है लेकिन विमला अत्याचार के सामने अपनी रक्षा करते हुए उन सात लोगों को मार देती है जो उसका अपमान कर रहे थे।

इस 'आंतक' कहानी में ठाकुरों की बौनी ठकुराई को नग्न करती है। आज भी देश में ठकुराई के नाम से दरिद्र दलित एवं पिछड़ी जाति के लोगों को अपने आक्रोश, अपनी हवस और अपने मद का शिकार बनाते रहते है। कहानी में राखी ऐसी ही पीड़ित शोषित नारी है पर विमला शोषको के विरूद्ध जागी हुई नारी चेतना है जो चुपचाप अत्याचार सहने वाली नारी नहीं है। पुलिस और कानून से उसका विश्वास उठ जाता है और वह विद्रोह करती है। ठाकुर प्रत्येक नारी को अबला ही समझता है अतः वही अत्याचार जब विमला से करता है तो विमला घायल शेरनी की तरह दहाड़ती है वह इतनी अक्रामक हो जाती है कि अकेली ही ठाकुर और उसके सात गुण्ड़ो की हत्या कर देती है। जो कानून और पुलिस उस अबला की रक्षा नहीं कर पाया। उसी पुलिस ने हत्या करने वाली सबला विद्रोहणी नारी को जेल में बन्द कर देती है। इस प्रकार दलित स्वतन्त्रता की प्रतीक दलित नारी चेतना के रूप में हमारे सामने आती है। विमला के समान मर्दानगी अन्यत्र दुलर्भ है। इस कहानी में लेखक ने नायिका विमला साधारण स्त्री में छिपे असाधारण साहसिक गुणों का उजागर किया है। यह आज की दलित चेतना को जागृत करने वाली नारी का प्रतीक है।

अब हम रतन वर्मा की कहानी 'बलात्कारी' में विल्टुआ नाम का युवक है उसका उसी गांव की लड़की स्नेही से विवाह होने वाला था। गांव के ठाकुर के बेटे जगत सिंह ने स्नेही से बलात्कार किया। बिल्टुआ जानने के बाद चुप नहीं बैठा। बिल्टुआ ने जगत सिंह की ठकुराईन के साथ वैसा ही अत्याचार करके बदला ले लिया। उल्टा उसे अदालत में डकैती के जुर्म में सजा सुनाई जाती है। बिल्टुआ चीख–चीख कर कहता है कि अपराध उसने नहीं किया। पर कोई नहीं सुनता। यदि बिल्टुआ अदालत के सामने सच्चाई कहता तो ठाकुरों की इज्जत सारे समाज में उछलती। इसीलिए सभी ने मिलकर बिल्टुआ को डकैती के अपराध में सात साल की सजा दिलवा दी। सात साल सजा काट कर वापिस आने पर बिल्टुआ को पता चलता है कि सनेही मां बनने वाली थी गांव में उसे कुल्टा कहां गया। बिल्टुआ बहुत दुखी होता है। एक दिन बिल्टुआ ठाकुर की बहन के साथ उसकी शादी वाले दिन ही उससे बलात्कार करता है। उस बार उसे सही अपराध की सजा मिली क्योंकि उस घटना के सभी लोग साक्षी थे।

इस कहानी के दो तथ्य दिखते है। एक ठाकुरों का दलितों पर हुए अत्याचार और ठाकुर पर बिल्टुआ द्वारा नारी पर हुए अत्याचार। बिल्टुआ की जब स्कूल में पढ़ने की इच्छा थी तब मास्टर और ठाकुर ने मिलाकर ऐसा वातावरण बनाया कि वह पढ़ नहीं पाता इसीलिए

उसने मास्टर को मारा था। उसकी यही वृत्ति विद्रोही भावना का परिचय देती है। बचपन से ही अन्याय के सामने आग बबूला हो जाता था, लेकिन उसे वहां मालूम था कि ठाकुरों के होते उसकी आवाज कोई नहीं सुनेगा। हमारे देश में कानून व्यवस्था तो है पर उनके रक्षक कैसे है इसका प्रमाण प्रस्तुत कहानी में मिलता है। बिल्टुआ ने ठकुराईन से बलात्कार किया तो उसे किये अपराध के बदले दूसरे ही अपराध के दोष में फांस कर सजा दिलाई जाती है। पुलिस वही कानून का शिकंजा कसती है जहां अपरिपक्व और गंवार लोगों को मारकर गलत गुनाह मनवाते है और इस प्रकार बड़े लोगों की झूठी शान को बचाया जाता है। आधुनिक भारत में हमें ऐसे दृश्य अनेक बार देखने को मिलते है। बड़े लोग कानून की धज्जियां उड़ाते है। अपराध स्वीकार करने की बात तो दूर वह स्वीकार भी नहीं करते। समाज के समक्ष कभी नहीं आते वही पिछड़े लोग अपने अपराध को स्वीकार कर सजा पाते है।

कहानी का दूसरा पहलू नारी पर हुए अत्याचार है। बिल्टुआ की मां पर ठाकुर ने रात के अन्धेरे में कितने अपराध किये पर वह सहती ही रही। उसने कभी ठाकुर की शिकायत नहीं की। क्योंकि उसे निरक्षता और सामाजिक पूर्वाग्रह की चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता था। वह जानती थी कि अपने जाति में सामूहिक शक्ति का अभाव है। तभी वह चुपचाप सहती रही। यही बिल्टुआ ने बचपन में कई बार सहा है इसी की प्रतिक्रिया बार–बार मन में विद्रोह की भावना जागृत होती है। बिल्टुआ स्नेही पर हुए अत्याचार को सहन नहीं कर सका तभी उसने अपने मालिक से प्रतिशोध लिया। सत्य तो अत्याचार तो ठकुराईन और ठाकुर की बहन से हुआ था। यह बात सवर्ण या दलित जाति की नहीं बल्कि अत्याचारों ने केन्द्र में नारिया ही है फिर चाहे अत्याचार किसी भी जाति का पुरूष करता है लेकिन सहना तो एक नारी को पड़ता है। बिल्टुआ प्रतिहिंसा की आग में जलता हुआ अवसर पाते ही ठाकुर की बेटी रेवती जो उसकी मां और प्रियतमा की तरह ही निद्रोष थी उसके साथ बलात्कार करता है। नारी सशक्तीकरण की आवाज उठाने वाले समाज में ऐसी घटनाएं भी घटित होती है। बिल्टुआ ठाकुरों को मारकर बदला ले सकता थी। पर वह ऐसा नहीं करता, शायद ठाकुरों को बताना चाहता था कि जब अपनी मां बहन और पत्नी से कोई अत्याचार करता है तो उसकी पीड़ा वह उन ठाकुर के दिल में पैदा करना चाहता है। शूद्रों की नारियों को सदा से उच्च जाति के आदमी के द्वारा शोषण किया जाता है। कहानी में उन दरिन्दों का सामना करता हुआ बिल्टुआ को जेल जाना स्वीकार है यो कहिए कि वह कानून की फिर भी इज्जत करता है लेकिन अन्याय के समक्ष वह झुकता नहीं बल्कि जूझता है।

'अब नहीं नाचव' कहानी 'राम निहोर विमल' द्वारा लिखित है। कहानी की कथा इस प्रकार है कि गांव में पंडित दीन दयाल का वर्चस्व था कि उनके बनाए हुए नीति नियम ही कानून बन जाता था। गांव में उनका ही आदेश चलता था। दलित वर्ग का कन्हई शेर सिंह के खेत में कामकरता था। कन्हई अपने अतिथि बने समधी का स्वागत गेंहू की रोटी से करना चाहता था। वह शेर सिंह के पास गेहूं लेने जाता है। पंडित द्वारा सिखाई बात शेर सिंह कन्हई को मना करते करता है–

'' हम है गेहूं देवता दनियां
खइ है बामन–क्षत्रिय–बनियां
शूद्र के घर हरगिज नहि जई बै
भले कुठिला मैं सड़–घुन जई बै।''

कन्हई समझ जाता है कि गेहूं नहीं मिलेगा पर वह ईट का जवाब अब पत्थर से देना होगा ऐसा विचार कर कन्हई वहां से चला जाता है। दूसरे प्रसंग में वह गेहूं देवता वाली बात अपनी बिरादरी में करता है सभी ने निश्चय किया कि अब हम इस अन्याय को नहीं सहन करेगे। सारी जमींदारी खेती–बाड़ी, तो हम ही करते है हम उन्हें ऐसा जबाव देंगे। मौसम की पहली वर्षा होते ही कन्हई अपने मालिक के घर जाता है। जब शेर सिंह हल बैल लेने को कहता है तो कन्हई शीघ्र ही मालिक का आदेश माना जाता है हल लेने गया कन्हई दौड़ता वापिस आकर मालिक को कहता है कि हल देखता बोलते है–

'' हम है हल देवता–दनियां,
जाति है वांयन–क्षत्रिय–बनियां
शूद्र–बांध हरगिज नहि जई बै,
भले ओरिया तर सड़–गल जइ बै।''

शेर सिंह सुनते ही समझ जाते है कि मेरे हथियार से कन्हई ने मुझ पर वार किया है। पर वह अब क्या करें। कहानी के तृतीय प्रसंग में दलित समाज की एकता से शेर सिंह उपाय ढूंढ़ते ही गेहूं चावल का एक–2 बोरे लेकर कन्हई को मना लेता है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार राम निहोरे जी बताना चाहते है कि विद्रोह का जन्म असन्तोष से होता है। एक वर्ग या व्यक्ति अपनी स्थिति से असन्तुष्ट होता है तो उससे उभरने के लिए कन्हई के समान एकत्रित होकर अपने अधिकार पा लेते है। हमारे समाज में मजदूर वर्ग का शोषण साधारण सी बात है। मजदूर परिश्रम करके जमीदारों के घर भर देते है यदि वह कुछ मांगते है तो उन्हें अपमानित कर निकाल देते है। देश के छोटे–छोटे गांवों में द्विजों की इच्छा का सम्मान रखना पड़ता है नही तो यह कोपित हो जायेगे। लेखक के शब्दों में– द्विजों के शोषण–दमन उत्पीड़न के प्रतिरोध की कहानी है जिसमें अपनी प्रतिरोध की निश्चित प्रतिबद्धता के कारण, शूद्र जाति ने अपनी अशिक्षा को आड़े नहीं आने दिया। इसमें उस समय का वर्णन किया है। जब जनवाद साम्यवाद, समाजवाद आदि का जन्म नहीं हुआ था। भारतीय गांव जब आत्मनिर्भर थे। वर्ण–व्यवस्था अपनी चरम सीमा पर थी। छूआछूत को बनाने वाले लोग अपने–अपने स्वर्गो में आनन्दित थे उनके पैदा किए नर्को में शूद्र अन्त्यज दास पिशाच चाण्डाल एक सिर दो हाथ दो पैर होते हुए और कोई सींग–पूछ न होते हुए भी, कुत्ते–बिल्लियों–जानवरों एक कीड़ो–मकोड़ो जैसा जीवन जीने का अभिशप्त थे और पूरे देश का आने वाला भविष्य यहां आने की कल्पना मात्र से जार–बे जार रो रहा था।'' रामनिहोरे विमल दलित समाज को उनके अधिकार के लिए जागृत करते है विद्रोह करते हुए कहते है कि–जाति धर्म के नाम पर अन्याय शोषण करने वाले उच्च वर्ग को कहते है कि हम चुप नहीं रहेंगे। इस प्रकार

से इस कहानी में यह स्पष्ट होता है कि अब ये लोग जागृत हो चुके है चाहे गांव के गंवार अनपढ़ हो, लेकिन ये सोच भी सकते है कि ऐसी मुश्किल का सामना अपने दम पर कर सकते है।

निष्कर्ष

इस प्रकार से लेखक का उद्देश्य इस कहानी में जीवन संघर्ष के चित्रण द्वारा उस समाजवादी चेतना की ओर निर्देश करना है जो साधन हीन एवं वंचित दलितों के अन्तर में अन्याय तथा अत्याचार के प्रति विद्रोह की भावना को जन्म देती रही है। तीनों कहानीकारों ने दलित शोषित वर्ग की पीड़ा को अपने–अपने अनुपम तरीके से इन कहानियों में वर्णित किया है। दलितों को धार्मिक संस्थाओं में जाने की छूट दुकानों रेस्तरां, कुएं, तालाब और सड़कों पर जाने का अधिकार सरकार ने दे तो दिया पर क्या सामान्य जन सामाज ने पूर्णतयाः स्वीकार किया है ? इस प्रश्न का उत्तर हमारे पास नहीं है। दलित शोषित समाज के प्रश्न जब शाश्वत प्रश्न के रूप में कहानी में मिलते है तभी कहानी का प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है। जातिवाद, अस्पृश्यता का विरोध वह दलितों के आन्तरिक जीवन में भी करता है। दलित समाज दलित के लिए दलित धर्म और दलित संस्कृति की खोज करता है। शोषण और उत्पीड़न का विरोध कर मनुष्यता की स्थापना करना ही दलित साहित्य का सर्वप्रथम लक्ष्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शिव राम वामन आम्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्द कोश, (दिल्लीः मोतीराम बनारसी दास, 1981) पृ. 964.*
2. *महेन्द्र चतुर्वेदी एवम् भोलानाथ तिवारी, व्यावहारिक हिन्दी अंग्रेजी शब्द कोश।*
3. *रामचन्द्र वर्मा संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, वाराणसीः काशी प्रचारिणी सभा, पृ. 468.*
4. *कल के लिए, दिसम्बर– 1998, पृ. 59.*
5. *वही पृ. 17.*
6. *सत्यप्रेमी पुरूषोतम, दलित साहित्यः रचना और विचार, नई दिल्लीः आतीश प्रकाश, 1997 पृ. 35.*
7. *कल के लिए, दिसम्बर, 1998, पृ. 59.*
8. *महीप सिंह, चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, साहित्य और दलितचेतना, नई दिल्लीः अभिव्यंजना, 1982 पृ. 101–7.*
9. *मुद्राराक्षस, नयी सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियां (इलाहाबाद लोक भारती प्रकाशन, स. 2008) पृ. 181.*
10. *डॉ. सी.बी. भारती– दलित साहित्य का सौन्दर्यबोध, हंस. 11, 1996 पृ. 72.*
11. *बाबू राव बागुल, दलित साहित्य उद्देश्य और वैचारिकतों, बसुधा–58, जुलाई–सितम्बर, 2003, पृ. 28.*
12. *सत्यनारायण व्यास, दलित साहित्य, मधुमती जनवरी, – 1994 पृ. 32.*
13. *रमणिका गुप्ता, दलित कहानी संचयन, नई दिल्ली, साहित्य आकादमी, सं. 2006, पृ. 13–14.*
14. *जय नारायण बहराइच, कल के लिए त्रैमासिक, उ. प्र. दिसम्बर 1998 पृ. 62.*
15. *माता प्रसाद , हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, वाराणासी विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्र. सं. 1993. पृ. 157–58.*
16. *पूरणमल, अस्पृश्यता व दलित चेतना जयपुरः पोइन्टर पब्लिशर्स 1999, पृ. 48.*
17. *राज किशोर, हरिजन से दलित, नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन 1995–पृ.*
18. *समकालीन भारतीय साहित्य मई–जून–2011 नई दिल्ली.*
19. *विमल शोरात, दलित अस्मिता, नई दिल्ली, जुलाई–दिसम्बर–2011.*
20. *महीपाल सिंह, दलित टुडे, फाजिफवाड़ फरवरी 2002 सितम्बर 2002.*
21. *रामशरण जोशी, पश्यन्ती, दलित चेतना अंक, इन्दौर, नई दुनियां न्यूज एक नेटवर्क, अप्रैल जून 1998.*